International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 27-12-2024, Accepted: 26-01-2025, Published: 10-02-2025
Volume 11, Issue 1, 2025, Page No. 35-38

भारतीय संस्कृति के प्रहरीः मिथक

डॉ. सरिता चौहान
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, एमसीएम डीएवी महिला कॉलेज, चण्डीगढ़, भारत

सारांश
प्रत्येक देश की संस्कृति उसके मिथकों में सुरक्षित रहती है। अपने सरलतम रूप में मिथक एक ऐसी कथा है जिसमें लौकिक एवं अलौकिक तत्त्वों का सम्मिश्रण है। यथार्थ के धरातल पर जो कुछ असम्भव लगता है मिथकों के संसार में प्रवेश करते ही वह सम्भव हो जाता है। भाषा एवं साहित्य के विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। लोक मंगल के उदात्त आदर्शों को लेकर चलते, अनाचार पर अंकुश लगाते तथा एक सभ्य समाज की स्थापना करते मिथक हर युग में प्रासंगिक रहे हैं। मिथकों के माध्यम से हम अपनी संस्कृति को सहेजते एवं पोषित करते हैं। समाज के बिखराव, उदासीनता, अनाचार आदि पर अनुशासन का अंकुश लगाकर मिथक स्वस्थ समाज की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। यदि हम भारतीय संस्कृति एवं चिन्तन के अविरल प्रवाह पर ध्यान दें तो हम पाऐंगे कि प्राक् ऐतिहासिक काल से संस्कृति, चिन्तन, परम्पराओं तथा धार्मिक मान्यताओं को सुरक्षित करने का कार्य मिथक कर रहे हैं।

मूल शब्दः मिथक, संस्कृति, प्रहरी, सार्वभौमिक, आदिम–यथार्थ, पौराणिक–आख्यान, सामूहिक–अवचेतन, आधुनिक–विसंगतियाँ, अतिवैयाक्तिकता, बौद्धिकता, बिम्बात्मक–सृजन, अतिप्राकृत–घटनाएँ, नैतिक–मूल्य, लोकमंगल, सांस्कृतिक–विकास

विश्व के प्रत्येक देश की अपनी–अपनी संस्कृति होती है। उनकी संस्कृतियों की बुनावट, स्वरूप और विकास अलग–अलग होता है। किन्तु एक संकल्पना जो सभी संस्कृतियों में समान है वह है– संस्कृति के प्रहरी के रूप में शमिथकश की स्वीकार्यता। मिथक किसी भी संस्कृति को जानने एवं समझने का महत्त्वपूर्ण माध्यम होते हैं। इस तथ्य में तनिक भी संदेह नहीं है कि प्रत्येक देश की संस्कृति उसके मिथकों में सुरक्षित रहती है। "सांस्कृतिक प्रहरी मिथक–कथाएँ जीवन के प्रत्येक पक्ष को समेटे रहती हैं। काल और वातावरण बाह्य स्वरूप को बदल सकते हैं किन्तु मानव समाज की अंतर्वृत्ति में परिवर्तन नहीं ला सकते। मिथकों का निर्माण अनायास ही नहीं होता। वे चेतन और अवचेतन मन की क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम हैं। मिथक वीथिका के दूसरे छोर से लेकर वर्तमान प्रवेश द्वार तक आवरण, रंग, स्वरूपगत परिवर्तनशीलता भले ही आभासित हो, किन्तु वे (मिथक) मानव की मूल अंतश्चेतना का निरन्तर द्योतन करते रहे हैं। उन्हें देशकाल और वातावरण में आबद्ध नहीं किया जा सकता। उनकी महत्ता सार्वभौमिक हैं क्योंकि उनके स्वर की गूंज किसी भी संस्कृति से क्यों न जुडी हो– नैतिकता का प्रसार करती है।"[1]

'भारतीय संस्कृति के प्रहरीः मिथक' विषय पर निभ्रान्त चर्चा हेतु मिथक एवं संस्कृति पर विचार कर लेना आवश्यक है। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि– "मिथक आदिम मनुष्य की भाषा है जिसके माध्यम से वह जीवन और प्रकृति के रहस्यों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं को अलौकिक गाथाओं के रूप में अभिव्यक्त करता था। वह आदिम यथार्थ के प्रति सामूहिक अवचेतन मन का सहज स्फूर्त बिम्बात्मक सृजन है। सूर्य का उगना, चन्द्रमा की शीतलता, बादलों की उमड़–घुमड़, बिजली की चमक, फसलों का उगना आदि उसकी दृष्टि से विस्मयात्मक, रोमांचकारी और रहस्यात्मक व्यापार थे। इन्हीं व्यापारों के इर्द–गिर्द मिथक–चक्र घूमा करता था।"[2] डॉ० नगेन्द्र का मिथक के बारे में कहना है, "सामान्य रूप से मिथक का अर्थ है ऐसी परम्परागत कथा, जिसका सम्बन्ध अतिप्राकृत घटनाओं और भावों से होता है। मिथक मूलतः आदिम मानव के समष्टि मन की सृष्टि है, जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य होता है।"[3] हिन्दी में मिथक शब्द का प्रयोग आधुनिक काल में हुआ। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस शब्द का प्रयोग किया। "संस्कृत के मिथ शब्द के साथ कर्तावाचक 'क' प्रत्यय जुड़ने से इसका निर्माण हुआ है। संस्कृत में मिथ शब्द का अभिप्राय प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए भी होता है तथा दो तत्त्वों के परस्पर सम्मिलन के लिए भी। मिथक के सन्दर्भ में दोनों ही अर्थ जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। वह लौकिक तथा अलौकिक तत्त्वों का सम्मिश्रण है। लौकिक तत्त्व प्रत्यक्ष अनुभूति है तो अलौकिक अध्यात्म तत्त्व। दोनों का मिश्रण मिथक के रूप में द्रष्टव्य है।"[4]

डॉ० अमरनाथ के अनुसार मिथक शब्द अंग्रेजी के मिथ शब्द से गढ़ लिया गया है। अगर उद्भव की बात करें तो हम पाते हैं कि "मिथ शब्द का उद्भव युनानी शब्द 'मिथोस' से हुआ हैं जिसका अर्थ है मुँह से निकला हुआ। अतः उसका सम्बन्ध 'मौखिक कथा' से जुड़ गया क्योंकि कथा भी सुनी–सुनायी जाती थी। हिन्दी में मिथक के लिए पुरावृत्त, पुराकथा, कल्पकथा, देवकथा, धर्मकथा, पुराणकथा, पुराख्यान आदि अनेक शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं।... वस्तुतः अपनी सरलतम परिभाषा में मिथक एक कथा है, जिसमें सृष्टि और उसके उपकरणों के उद्भव, उसकी गतिक्रिया और उस पर नियंत्रण, उसके अबूझ व्यापार, मूलभूत मानवीय क्रियाओं और समस्याओं, प्रतिरूपों और तत्त्वों, जीवन मरण आदि विहंगम विषयों को लेकर आरम्भकालीन धारणाएँ, चिन्ताएँ, विश्वास और तत्सम्बंधी कर्मकांड को अभिव्यक्ति मिली है।"[5]

फ्रांसीसी समाजशास्त्री डर्कहीम का मत है कि "मिथक का सम्बंध प्रकृति से नहीं, समाज से है।"[6] प्रसिद्ध समाजशास्त्री मलिनोस्की के अनुसार, "मिथक न तो प्रकृति के प्रति चामत्कारिक प्रतिक्रिया है और न विगत का आलेख। उसका प्रयोजन सामाजिक व्यवस्था का संरक्षण और संचालन है। उसके अध्ययन को प्रकार्यवादी अध्ययन कहा जाता है जो मूलतः मानवतावादी है।"[7] इस प्रकार हम पाते हैं कि मिथक किसी भी संस्कृति की समझ और पहचान के लिए उपादेय होते हैं। मानव समाज और उसके संस्थागत विकास रूपों के अध्ययन में मिथकों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान है। वास्तव में मिथक संस्कृति के अंगमात्र नहीं अपितु संस्कृति के परिचायक भी हैं। डॉ. नगेन्द्र मिथक को दो वर्गों में बाँटते हैं दृ"प्राकृतिक मिथक और धार्मिक मिथक। उन्होंने धार्मिक मिथकों को भी दो हिस्सों में बाँटा है– उपास्य देवों के स्वरूप से सम्बद्ध मिथक और कर्मकांड सम्बन्धी मिथक।"[8] मिथकों का

संसार अलौकिक और अतार्किक है। ये सृष्टि के साथ मनुष्य के सम्बंधों की रागात्मक गाथा है। सत्य तो यह है कि "जिस स्थल पर ज्ञात और अज्ञात, मनुष्य और प्रकृति, कल्पना और यथार्थ का मेल होता है, वही बिन्दु मिथक के उद्‌भव का बिन्दु है। मिथक के माध्यम से मनुष्य प्रकृति को अपने अनुकूल बनाने के चेष्टा तो करता ही है, साथ ही अपनी कल्पना में निहित सृजनात्मक शक्ति की असीम सम्भावनाओं को संकेतित भी करता है। यथार्थ के संसार में जिन शक्तियों के निकट मनुष्य असहाय था, मिथक में उन्हीं पर विजय प्राप्त कर सर्वशक्तिमान बन गया। यथार्थ के धरातल पर जो कुछ अलभ्य और असम्भव था, मिथकों के संसार में प्रवेश करते ही वह सुलभ और सम्भव हो गया। ईश्वर के रूप में मनुष्य ने एक लोकोत्तर शक्ति की परिकल्पना की। उसका अपना जीवन क्षणभंगुर था, लेकिन मिथकों ने उसे अमरत्व की संकल्पना प्रदान की। मिथकों के संसार में कल्पवृक्ष, कामधेनु, ऐश्वर्य, स्वर्ग, रामराज्य सब कुछ विद्यमान था, जिससे कि सांसारिक जीवन की सभी समस्याओं से त्राण पाया जा सकता था।"[9]

निस्संदेह मिथक हमारी संस्कृति की पहचान है। मिथकों के माध्यम से हम अपनी संस्कृति को सहेजते एवं पोषित करते हैं। प्रश्न उठता है कि संस्कृति से हमारा क्या अभिप्राय है? सार रूप में कहें तो, "प्रत्येक देश की सर्वतोन्मुखी विकास धारा को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति और सभ्यता में बहुत अन्तर होता है। सभ्यता बाह्य आचार–विचार, व्यवहार तक सीमित रहती है किन्तु संस्कृति प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों का सुसंस्कार (परिष्कार) करती है। सांस्कृतिक विकास का प्रथम सोपान दोषमार्जन है, दूसरा अतिशयाधान और तीसरा हीनांगपूर्ति। कृषि का उदाहरण लें तो फसल से प्राप्त गेहूँ, धान अथवा चावल की भूसी उतारना दोषमार्जन है, उसको तरह–तरह से पकाना अतिशयाधान तथा शाक–दाल आदि से उसका सम्बन्ध जोड़कर कुछ कमियों को पूरा करना हीनांग पूर्ति है।"[10]

सत्य तो यह है कि हृदय और बुद्धि का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ मिथक की पहुँच न हो। मिथकों की उपादेयता को शब्दबद्ध कर पाना सहज नहीं है। वास्तव में "भारतीय संस्कृति में मिथक साहित्य मूलतः पूज्य भावनाओं का विषय था। आधुनिक काल तक पहुँचते–पहुँचते वह बहुआयामी मनःस्थितियों का आलंबन बन गया। नारी की महत्ता, जातिपांति–अभेद, नैतिकता की रक्षा, वीरता, भारतीय संस्कृति की सुरक्षा करने के निमित्त वह बिम्ब और प्रतीक के रूप में उभरा। धीरे–धीरे वही मिथक कष्टाप्लावित समाज को सांत्वना प्रदान करने लगे। कुंठाओं में दबा व्यक्ति अपनी प्रतिभा को कुचला जाता देख त्रस्त मन से ओजस्वी मिथक पात्रों को उलाहना देने लगा। कहीं–कहीं मिथक दुखी समाज के व्यंग्य के माध्यम भी बने।"[11] आधुनातन खोजों के आधार पर यह निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि मिथक कपोलकल्पित नहीं है। इतिहास की तूलिका से रंगते–पुतते ये रूप बदलते रहते हैं। सामयिक प्रभाव उसे विभिन्न युगों की सामाजिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, आयुर्वेदिक, दार्शनिक आदि अनेक सम्पदाओं से आपूरित करता रहा है। इस परिवर्तनशीलता के आवरण में भी मिथकों का अलौकिक पक्ष यथावत् बना रहता है और इसी कारण से भारतीय संस्कृति की मूलभूत चेतना निरन्तर पल्लवित होती रही है।

मिथक जातीय अतीत का अक्षय रिक्थ होते हैं। मिथक–साहित्य ने भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वेदों से लेकर अपभ्रंश साहित्य तक अंकित नैतिकता को दोहराकर मिथक मानव मन पर नैतिक अंकुश लगाते जान पड़ते हैं। भारतीय मिथक परम्परा का प्रारंभ ऋग्वेद से हुआ। वे श्रुति अर्थात् वेदों की प्राचीनतम सर्वस्वीकृति हैं। वेदों से लेकर उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध तथा जैनधर्म तक के साहित्य में भारत के मूलभूत मिथक विद्यमान हैं। मिथक स्थापित करते हैं कि समाज के लिए आत्मोत्सर्ग मानवता का लक्षण है। लोकमंगल के उदात्त आदर्शों को पुष्ट करते मिथक भटके एवं द्वंद्व–ग्रस्त मानव समाज को सुमार्ग की ओर प्रेरित करते हैं। आधुनिक साहित्य में मिथकीय चेतना का बहुमुखी विकास हुआ। इस युग में पाश्चात्य प्रभाव से ग्रसित भारतीय समाज में धीरे–धीरे हृदय पक्ष की अपेक्षा बौद्धिक पक्ष अधिक प्रबल हो गया। फलतः मिथकों के प्रति श्रद्धा की अपेक्षा तर्क का भाव प्रबल होता गया। परम्परागत पूज्य भावनाओं के आलंबन मिथकीय पात्रों का साधारण मनुष्यों के रूप में अंकन किया गया और इस प्रकार मिथकों का रूप ही बदल गया। मिथक कथाएँ प्रतीक और बिम्ब के साथ–साथ आलोचना, व्यंग्य और चुनौती का आलम्बन बन गयी–

"जिन्दगी एक युद्ध है–
जहाँ न कोई अर्जुन है
न सारथी कृष्ण
कुछ कर्ण हैं जो
अपनी पैदाइश का कर्ज ढो रहे हैं
और अभिमन्यु हैं कुछ
जो अधर्मी महारथियों से
लड़ लड़ कर–
शहीद हो रहे हैं।"[12]

बौद्धिक चेतना से विमोहित आधुनिक कवियों ने पौराणिक चरित्रों को श्रद्धा के स्थान पर तर्क की कसौटी पर कसा है–

"मैंने कब दावा किया था
अपने सूर्यम्पश्या होने का
* * * *
मैं तो मात्र लाक्षा गृहों के बीच
जलते देखता रहा था एक आत्मीय परिवेश"[13]

और

"बांझ कामधेनुए
रंभाती हुई आयीं
और मेरे चारों और आकर ठहर गयीं।"[14]

यहाँ बांझ कामधेनु इस तथ्य का प्रतीक है कि सूम प्रवृत्ति के लोग दाता होने का अभिनय कर रहे हैं और जनसाधारण उनमें घिरकर रह गया है। यह सच्चाई है कि आधुनिक युग के अतिवैयक्तिकता, अनास्था और कुंठा के वातावरण ने जीवन मूल्यों को विघटित किया और बिखराव की समस्या बढ़ी। इन सभी को साहित्य में मिथकों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली। मिथकों की शक्ति यह रही कि मिथकीय घटनाएँ और पात्र समाज के हर परिवेश के अनुरूप ढलते गये। आधुनिक हिंदी साहित्य में वे समाज के बहुआयामी प्रयोगों का माध्यम बन गए। मिथक को विषय के रूप में अपनाने के बारे में दुष्यन्त कुमार का कहना है "मिथक हमारे चेतन के साथ–साथ अवचेतन से भी गहरे तौर पर जुड़े होते हैं। परम्परागत रूप से इनका प्रभाव हमारे जीवन और संस्कृति पर प्रबल होता है। इन मिथकों से रचनाकारों को एक कथ्य मिल जाता है जिसके सहारे रचना का पूरा वितान रचा जा सकता है।"15 मिथकों की पृष्ठभूमि तो पौराणिक होती है किन्तु सत्य समकालीन होता है। मिथक समाज के लिए दिशा सूचक होते हैं। ये कालातीत होते हैं तथा युगीन सन्दर्भों को परम्परा के साथ जोडकर अनुत्तरित समझे जाने वाले प्रश्नों के समाधान में सक्षम होते हैं। मिथकों के माध्यम से विडम्बनाओं एवं विसंगतियों का समाधान आधुनिक लेखकों का अभिष्ट रहा है। धरमवीर भारती का 'अंधा युग' तथा दुष्यन्त कुमार का 'एक कण्ठ विषपायी' मिथक पर आधारित ऐसी दो सशक्त रचनाएँ हैं जिनमें

अपने समय की समस्याओं से जूझने और टकराने की हिम्मत है। एक कण्ठ विषपायी में दुष्यन्त कुमार कहते हैं कि युद्ध शासकों की महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए लड़े जाते हैं किन्तु उनका दुष्परिणाम प्रजा को भुगतना पड़ता है–

"चाहे न चाहे
किन्तु
शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
प्रजा को वहन करना पड़ता है
उसे गलित मूल्यों का दण्ड भरना पड़ता है।"[16]

इंद्र के यह कहने पर कि अब शिव के साथ युद्ध के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं बचा, ब्रह्मा सचेत करते हुए कहते हैं–

"देवराज
युद्ध ...
अधिक–से–अधिक विशिष्ट परिस्थितियों में
समाधान का सम्भव कारण बन सकता है,
यही नियम है।
–लेकिन कोई शासक मन में
स्वयं युद्ध को,
किसी समस्या का किंचित भी
समाधान समझे तो भ्रम है।"[17]

युद्ध को एकमात्र समाधान मानने वाली विश्व–शक्तियों को राह दिखाती यह पंक्तियाँ किसी और स्पष्टीकरण की अपेक्षा नहीं रखती।
संशय की स्थिति प्रत्येक युग एवं समाज का सार्वभौम सत्य है। मिथक ऐसे संशयों के समाधान में महती भूमिका निभाते हैं। नरेश मेहता द्वारा रचित 'संशय की एक रात' और 'प्रवाद पर्व' रचनाओं में मिथकों के माध्यम से आधुनिक युग की दो बड़ी समस्याओं – युद्ध का औचित्य–अनौचित्य तथा शासन द्वारा स्वतंत्र अभिव्यक्ति की रक्षा सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करते हुए समकालीन जनतांत्रिक सन्दर्भों को वाणी दी है। 'संशय की एक रात' में राम का मानना है कि सीता को छुड़ाना उनकी व्यक्तिगत समस्या है अतः वे युद्ध कर नरसंहार नहीं चाहते–

"युद्ध नहीं होगा
क्योंकि सीता का हरण
राम की व्यक्तिगत समस्या है "[18]

'प्रवाद पर्व' में जब धोबी द्वारा सीता पर लगाए गए अभियोग को राजद्रोह की संज्ञा दी जाती है तो राम कहते हैं कि अपनी बात कहने का अधिकार सभी को है चाहे वह राजपुरुष हो या जनसाधारण। राम के अनुसार जनसाधारण को वाणी–विहीन करना कायरता है क्योंकि –

"गूंगेपन से कहीं श्रेयस है
वाचालता
जिस दिन
मनुष्य अभिव्यक्तिहीन हो जाएगा
वह सबसे अधिक
दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा।"[19]

कुंवर नारायण का 'चक्रव्यूह', शंकरशेष का 'एक और द्रोणाचार्य' त्तथा 'कोमल गांधार', दिविक रमेश का 'खण्ड–खण्ड अग्नि', भारतभूषण अग्रवाल कृत 'अग्निलीक', डॉ. जगदीश गुप्त रचित 'शंबूक' आदि अनेकानेक ऐसी रचनाएँ हैं जो मिथक के वितान पर रची गई हैं। खण्ड–खण्ड अग्नि काव्य नाटक में दिविक रमेश ने सीता की अग्नि परीक्षा से सम्बंधित मिथक के माध्यम से नारी सम्मान को सशक्तता से स्थापित किया है।सीता अग्नि–परीक्षा के माध्यम से अपनी शुचिता को प्रमाणित तो कर देती हैं किन्तु राम को सचेत करते हुए कहती हैं–

"क्षमा नहीं किये जाओगे राम
सीता सी नारियों से
किसी भी युग में "[20]

"महाभारत के अठारहवें पर्व के अन्त में व्यास ने कहा है–
ऊर्ध्व बाहुर्विरौम्येस न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थ न सेव्यते ।। (18/5/62)

मैं दोनों हाथ उठाकर कह रहा हूँ कोई नहीं सुनता। धर्म से अर्थ और काम दोनों सिद्ध होते हैं तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते?"[21]
व्यास पूरे महाभारत में इस समस्या से जूझते रहे। मिथकों को लेकर कुछ ऐसी ही मानसिकता तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग की भी रही है। वे मिथकों की उपादेयता को संदेह की दृष्टि से देखते हैं, किन्तु मिथकों की सक्षमता को संदेह की दृष्टि से देखने वाले यह भूल जाते हैं कि मिथक हमारी संस्कृति के रक्षा कवच हैं। मिथक अपने भीतर उन नैतिक मूल्यों को समेटे रहते हैं जो देशकाल की सीमाओं में नहीं समेटे जा सकते। मिथकों के धागों से बुनी–गुंथी हमारी संस्कृति निस्संदेह मिथकों की ऋणी है। नैतिकता का प्रसार करती संस्कृति की प्रहरी मिथक कथाओं की प्रासंगिकता निर्विवाद है। आज का साहित्यकार समकालीन जटिल यथार्थ को मिथकों के माध्यम से ना केवल व्यंजित कर रहा है अपितु उसके निवारण के लिए प्रयासरत भी है।

निष्कर्ष

मिथक साहित्य देशीय इतिहास के साथ–साथ अपना स्वरूप बदलता रहता है। अधिकांश मिथक कथाएँ भावनात्मक प्रतीकों की सुन्दर योजना हैं । प्रत्येक व्यक्ति को कर्म के अनुसार फल प्रदान करती कथाएँ मानव समाज की अनैतिकताओं पर अंकुश लगाती हैं। एक सभ्य समाज की स्थापना में सहयोग देती मिथक कथाएँ अपने स्वरूप में आदर्शवादी रही हैं। ये कथाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि संघर्ष की आग में तप कर ही मनुष्य श्रेष्ठता का अधिकारी बनता है। प्रहलाद, श्रीराम, ध्रुव ऐसे ही महापुरुष थे जिन्होने संघर्ष के पश्चात समाज में मान–सम्मान प्राप्त किया। मिथक कथाओं में जहाँ एक ओर श्रवण कुमार, सावित्री, मैत्रेयी, राम, सीता आदि के माध्यम से समाज में आदर्शों की स्थापना का प्रयत्न किया जाता है, वहीं दूसरी ओर, मंथरा, कैकेयी, रावण, इन्द्र आदि की कथाओं के माध्यम से समाज में फैली विरूपताओं के कारणों एवं परिणामों की झलक दिखाकर समाज को सचेत भी किया जाता है। नहुष, रावण, नलकूबेर, मणिग्रीव आदि के चरित्र इस बात की पुष्टि करते हैं कि मदांध व्यक्ति का नाश अवशयंभावी है। यह मिथक की शक्ति ही है कि एक ओर कुम्भी पाक नरक का भय दिखाकर और दूसरी ओर स्वर्ग की सुख–सुविधा का लोभ दिखा कर मनुष्य के क्रियाकलाप पर अनुशासनात्मक लगाम लगायी जाती है और एक सभ्य समाज की स्थापना में सहयोग दिया जाता है।
आज का समाज मिथकों से बहुत कुछ पाता है। मिथक वह प्रकाशपुंज है जिसके आलोक में समाज अपने अंधकारपूर्ण जीवन से त्राण पाने का प्रयास करता है। बहुआयामी अर्थचेतना से सम्पृक्त मिथक सांस्कृतिक एवं सामाजिक चुनौतियों का मुक़ाबला करने में पर्याप्त सक्षम हैं। अपने परम्परागत रूप में मिथक आधुनातन समाज से जुड़े हैं। मिथकों की व्याख्या द्वारा प्राचीनता

वर्तमान के लिए ग्राह्य हो जाती है। वास्तव में जब मानव समाज अतीत को वर्तमान के साथ जोड़ने की सामर्थ्य खो देता है तो वस्तुएँ एवं घटनाएँ उसे अचम्भा लगने लगती हैं। मिथक युगीन सन्दर्भों को परम्परा के साथ जोड़ कर व्यापकता एवं सार्थकता प्रदान करते हैं। ये परम्परा एवं आधुनिकता तथा यथार्थ एवं आदर्श के बीच सेतु का कार्य करते हैं। मानव समाज और उसके संस्थागत विकास–रूपों के अध्ययन में मिथक की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। सार रूप में कहा जा सकता है कि मिथक हमारे सांस्कृतिक चरित्र का आधारभूत तत्त्व और मूल्यवान धरोहर हैं। आज भूमंडलीकरण के युग में जब संस्कृति पर लगातार आक्रमण हो रहे हैं और उसे हेय दृष्टि से देखने की एक परम्परा सी चल पड़ी है, मिथक संस्कृति के रक्षण एवं स्वस्थ समाज की स्थापना में निस्संदेह महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भ सूची

1. उषा पुरी विद्यावाचस्पति, भारतीय मिथक कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ –75
2. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज–शब्द, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ–77
3. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ–406
4. उषा पुरी विद्यावाचस्पति, भारतीय मिथक कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ–21
5. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ–406
6. बच्चन सिंह, हिन्दी आलोचना के बीज–शब्द, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ–77
7. वही, पृष्ठ–77
8. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ–408
9. पुष्पा गर्ग, आधुनिक हिन्दी कविता और मिथक, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृष्ठ–23
10. उषा पुरी विद्यावाचस्पति, भारतीय मिथक कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ–25
11. वही, पृष्ठ–106
12. वही, पृष्ठ–102
13. वही, पृष्ठ–103
14. वही, पृष्ठ–103
15. दुष्यन्त कुमार, एक कण्ठ विषपायी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013, पृष्ठ–129
16. वही, पृष्ठ–49
17. वही, पृष्ठ–103
18. नरेश मेहता, संशय की एक रात, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ–60
19. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977, पृष्ठ–43
20. दिविक रमेश, खण्ड–खण्ड अग्नि, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृष्ठ–78
21. बच्चन सिंह, महाभारत की संरचना, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ–128